6-2

कुम्भपर्व-माहात्म्य ।

(हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक माहात्म्य सहित)



"चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि ।"

(अथर्ववेद, ४।३४।७)

ब्रह्मा कहते हैं—'हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें ऐहिक तथा आमुष्मिक सुख देनेवाले चार कुम्भ-पर्वों का निर्माण कर पृथ्वी के चार स्थानों (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक) में प्रदान करता हूँ ।'

लेखक—

वेदाचार्य पं० श्री वेणीरामशर्मा गौड

अध्यापक—गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, काशी ।

—*—

संशोधित मूल्य ४-००

पुस्तक प्राप्तिस्थान—
कृष्णकुमार व्यास,
व्यास पुस्तकालय,
मानमन्दिर, काशी।

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिकप्रेस,
साक्षीविनायक, बनारस।

❀ कुम्भ का प्रतिपाद्य विषय ❀

१—कुम्भ-शब्दार्थ, २—कुम्भ का स्वरूप, ३—कुम्भ-प्रार्थना के मंत्र, ४—वेदों में कुम्भ-पर्व का वर्णन, ५—कुम्भपर्व या कुम्भोत्पत्ति की कथा, ६—कुम्भपर्व का उद्देश्य, ७—कुम्भपर्व का आध्यात्मिक रहस्य, ८—कुम्भपर्व के प्रवर्तक, ९—पूर्णकुम्भ और अर्धकुम्भ, १०—कुम्भपर्व के चार तीर्थस्थान, ११—चारों कुम्भों के पर्वदिन और स्नान दिन, १२—कुम्भस्नान का महत्त्व, १३—कुम्भ-मेला, १४—कुम्भ में हमारा कर्तव्य, १५—कुम्भ और साधु-समाज, १६—कुम्भ-सम्बन्ध में अनेक दन्त-कथाएँ, १७—धार्मिक जगत् और कुम्भ, १८—कुम्भ-पर्व में घृतपूर्ण कुम्भ-दानादि का महत्त्व, १९—कुम्भ स्नान की विधि, २०—हरिद्वार माहात्म्य, २१—प्रयाग माहात्म्य, २२—उज्जैन माहात्म्य और २३—नासिक माहात्म्य।

प्रथम संस्करण] सं २००४ [मूल्य आठ आना

श्री हरिः

❀ दो शब्द ❀

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः॥

(शुक्लयजुर्वेद, १६।८७)

'कुम्भपर्व सत्कर्म के द्वारा मनुष्य को इहलोक में शारीरिक सुख देनेवाला और जन्मान्तर में भी उत्कृष्ट सुखों को देनेवाला है।'

प्राचीनकाल से ही भारतीय हिन्दू-समाज में तीर्थों के प्रतिऔर उनमें होनेवाले पर्व-विशेष के प्रति आदर, श्रद्धा-भक्ति का अस्तित्व विराजमान है। अतएव यथावसर सभी बाल, वृद्ध, वनिताएँ तक तीर्थों में जाकर तीर्थप्रधान देवी-देवताओं का दर्शन, गङ्गा आदि पवित्र नदियों का स्नान और तीर्थान्तर्गत विरक्त ऋषि, महर्षि, मुनि, सन्त, महात्माओं के पुनीत दर्शन एवं उनके कल्याणमय धार्मिक उपदेश तथा सदाचार-शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक बनाते थे। वही प्रथा आज भी हिन्दू-जाति में किसी न किसी रूप में थोड़ी बहुत विद्यमान है। हिन्दू-जाति में आज ऐसा कोई अभागा होगा जिसने अपने जीवन में कम से कम चारों धाम, सप्तपुरी एवं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की तीर्थयात्रा का पुण्य प्राप्त न किया हो। वस्तुसत्ता तो यह है कि तीर्थयात्रा किए बगैर हिन्दूमात्र का जीवन ही व्यर्थ और सारहीन है।

सभी प्रान्त के तीर्थयात्री तीर्थस्थानों में प्रायः बारहों मास कुछ न कुछ जाते रहते हैं, किन्तु पर्व-विशेष में विशेषरूप से जाते हैं। तीर्थों में जाने के लिए सनातनधर्मी जनता महीनों से तैयारियाँ कर बड़े उत्साह से गर्मी शर्दी, वर्षा एवं हैजा, प्लेग आदि संक्रामक महामारी जैसी विपत्तियों की तनिक भी परवाह न कर रेल, मोटर आदि द्वारा अथवा पैदल ही यात्रा करते हुए हजारों लाखों की संख्या में तीर्थस्थान में पहुँच कर अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं। जब कभी तीर्थ-पर्व-विशेष में सुप्रबन्ध की दृष्टि से भीड़ को काबू में रखने के लिये सरकार की ओर से रेल की टिकट-प्राप्ति पर कठोर प्रतिबन्ध होता है उस समय भी धार्मिक हिन्दू जनता दुगुना-चौगुना मूल्य देकर रेल, मोटर, घोड़ागाड़ी, तांगा, एक्का आदि से तीर्थस्थानों में पहुंचते ही हैं।

तीर्थों में जानेवाले समस्त यात्रियों में से विरले ही होंगे जो तीर्थयात्रा का वास्तविक उद्देश्य और उसके महत्त्व आदिसे परिचित होकर तीर्थयात्रा करते हों। जो लोग तीर्थ के रहस्य आदि को न समझ कर तीर्थयात्रा करते हैं वे तीर्थयात्रा का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। अतः तीर्थयात्रा करने से पूर्व प्रत्येक तीर्थयात्री को चाहिये वह जिन तीर्थों में जाय वहाँ के तीर्थों के पूरे महत्त्वादि का स्वयं या किसी विद्वान् द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेवे, जिससे वह यथाविधि तीर्थयात्रा का फल प्राप्त कर सके। सब से श्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि प्रत्येक तीर्थयात्री को अपने साथ एक सुयोग्य विद्वान् को ले जाना चाहिये जिसके द्वारा मार्ग में सर्वदा सत्सङ्ग होता रहेगा और साथ ही तीर्थों के महत्त्वादि के भी श्रवण-मनन का विशेष लाभ होता रहेगा।

'प्रत्येक तीर्थयात्री कुम्भ-पर्व के रहस्य और महत्त्व को समझ कर तदनुसार श्रद्धा-भक्ति-सदाचरण द्वारा यथार्थ कुम्भ-पर्व-फल-प्राप्ति के भागी बनें' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मेरा चिरकाल से हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में होनेवाले कुम्भ-पर्व के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखने का विचार था। किन्तु 'उत्पद्यन्ते विलीयन्ते' के अनुसार मैं अपने आवश्यक कार्य की पूर्ति में सर्वदा असफल रहा।

कुछ ही दिन हुए हमारा और प्रियबन्धु श्री कृष्णकुमारजी व्यास महोदय का सर्वसाधारण जनता के लाभार्थ धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन-सम्बन्ध में घण्टों गम्भीर विचार-परामर्श चल रहा था कि प्रसङ्गवश व्यासजी ने मुझसे इस वर्ष संवत् २००४ में तीर्थराज प्रयाग में होनेवाले अर्धकुम्भी-पर्व के अवसर पर कुम्भ-सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक तैयार करने के लिए विशेषरूप से अनुरोध किया। अपने बन्धु के अनुरोध की आवश्यकता को सहर्ष स्वीकार करते हुए मैंने स्वल्प दिनों में ही 'कुंभपर्व-माहात्म्य' नामक लघु-पुस्तिका तैयार कर दी जो कि आज पाठकों के कर-कमलों में प्रस्तुत है। आज के भीषण महँगी के युग में प्रकाशक की ओर से इस पुस्तक के प्रकाशित करने का उद्देश्य केवल धार्मिक हिन्दू-जाति को लाभ पहुँचाना ही है। अतः इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ श्री व्यासजी विशेष धन्यवादार्ह हैं।

यद्यपि इस पुस्तिका के तैयार करने के लिये जितना पर्याप्त समय मुझे मिलना चाहिये था उतना नहीं मिल सका, तथापि मुझे पूर्ण विश्वास है इस लघु विवेचन द्वारा कुम्भ-पर्व सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयों से साधारण जनता को विशेष लाभ

होगा। यदि इस लघु पुस्तिका द्वारा कुम्भ-पर्व-प्रेमियों को कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

इस पुस्तक में स्थल-विशेष में जो शास्त्रीय प्रमाण-वाक्य उद्धृत किए गए हैं, उनमें से कतिपय स्कन्दपुराण के, कतिपय विष्णुपुराण के और कतिपय पद्मपुराण के हैं, किन्तु आज उक्त पुराणों में ये वचन प्रायः उपलब्ध नहीं होते हैं। अतः कुछ लोग इन्हें प्रमाण मानने में सङ्कोच करते हैं। वस्तुसत्ता तो यह है कि आज हमें अनेक पुराणों में 'खिल' अंश उपलब्ध नहीं होते, अतः बहुत सम्भव है ये वचन उनके ही हों। ऐसी स्थिति में किसी को भी पुराण-प्रमाण में अप्रमाण की कल्पना ही नहीं करनी चाहिए।

अन्त में मैं अपने प्रिय शिष्य श्री काशीनाथ शर्मा गौड़ को आशीर्वाद देता हूँ जिसके प्रेसकापी आदि तैयार करने के कारण यह पुस्तक शीघ्र तैयार हो सकी है।

काशी।
मकरसंक्रान्ति पर्व,
ता० १४।१।४८, (सं० २००४ वि०)

वेणीराम शर्मा गौड
(वेदाचार्य)

* श्रीहरिः *

कुम्भपर्व माहात्म्य ।

(हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक माहात्म्य सहित)

विघ्नौघध्वान्तविध्वंस--भास्करायित--विग्रहम् ।
अवलम्बे निरालम्बः साम्बं शिवमहर्निशम् ॥ १ ॥
वेद--विद्याधरं साक्षाच्छ्रीविद्याधरसंज्ञकम् ।
पितरं स्व-पितृव्यञ्च शिवदत्तमुपास्महे ॥ २ ॥
श्रीकुम्भ-पर्वमाहात्म्यं शास्त्रसिद्धान्तसम्मितम् ।
कुम्भतत्त्वमभीप्सूनां मोदायेदं वितन्वते ॥ ३ ॥

* कुम्भ-शब्दार्थ

१—कुं पृथ्वीं भावयन्ति संकेतयन्ति भविष्यत्कल्याणादिकाय महत्याकाशे स्थिताः बृहस्पत्यादयो ग्रहाः संयुज्य हरिद्वार-प्रयागादितत्तत्पुण्यस्थानविशेषानुद्दिश्य यस्मिन् सः कुम्भः ।

---

* यद्यपि योगार्थ मात्र से कुम्भ शब्द वाच्य अनेक पदार्थ कहे जा सकते हैं तथापि वर्णित कुम्भ-शब्द योगरूढ़ि ही है ।

२—कं जलं उम्भति पूरयति अवर्षणादिदुर्भिक्षेभ्यो दूरयतीति कुम्भः ।

३—कुं पृथ्वीं उम्भति पूरयति मङ्गलसम्मानादिभिरिति कुम्भः ।

४—कुः पृथ्वी उभ्यतेऽनुगृह्यते उत्तमोत्तममहात्मसङ्गमैः तदीयहितोपदेशैः यस्मिन् सः कुम्भः ।

५—कुः पृथ्वी उभ्यते लघूक्रियते पापप्रक्षालनैः पुण्यपरिवर्द्धनैश्च येन सः कुम्भः ।

६—कुं पृथ्वीं भापयति दीपयति तेजोवर्द्धनेनेति वा कुम्भः । (भातेर्ण्यर्थः)

७—कुं पृथ्वीं भावयति पोषयति विविधयागादिभिरिति वा कुम्भः । (ण्यर्थेभुवः)

८—कु कुत्सितं उम्भति दूरयति जगद्धितायेति वा कुम्भः ।

'पृथ्वी को भविष्यत्कल्याण की सूचना देने के लिये हरिद्वार, प्रयाग आदि पुण्यस्थान विशेष के उद्देश्य से निर्मल महाकाश में बृहस्पत्यादि महराशि एकत्र हों जिसमें उसे कुम्भ कहते हैं। समय-समय पर जलपूर्ति द्वारा अनावृष्टि प्रभृति दुर्भिक्षों से निवृत्त करने वाले को कुम्भ कहते हैं। पृथ्वी को मङ्गलसम्मान आदि से पूर्ण करने वाले को कुम्भ कहते हैं। उत्तम-उत्तम महात्माओं के सङ्गम तथा उनके हितोपदेशों द्वारा पृथ्वी (जगती) अनुगृहीत होती हो जिसमें उसे कुम्भ कहते हैं। पापों के प्रक्षालन तथा

पुण्यों के परिवर्धन द्वारा पृथ्वी का भार हलका किया जाय जिससे उसे कुम्भ कहते हैं। पृथ्वी को सुख-प्रदान तथा तेजोवृद्धि द्वारा दीप्त करने वाले को कुम्भ कहते हैं। पृथ्वी (राष्ट्र) को विविध यागादि सदनुष्ठानों द्वारा सम्भावित करने वाले को कुम्भ कहते हैं। कुत्सित दोषों को जगत्कल्याण की भावना से प्रेरित होकर दूर करने वाले को कुम्भ कहते हैं।'

कुम्भ का स्वरूप

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः॥

'कलश के मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र, मूल भाग में ब्रह्मा, मध्य भाग में मातृगण, कुक्षि में समस्त समुद्र, पहाड़ और पृथ्वी रहते हैं। और अङ्गों के सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद भी रहते हैं।'

कुम्भ-प्रार्थना के मन्त्र

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥

'हे कुम्भ ! देव–दानव के विवादरूप में समुद्र के मथे जाने पर तुम्हारी उत्पत्ति हुई जिसे साक्षात् भगवान् विष्णु ने धारण किया। उस तुम्हारे जल में समस्त तीर्थ, समस्त देवता, समस्त प्राणी, प्राण आदि स्थित रहते हैं। तुम साक्षात् शिव, विष्णु और ब्रह्मा हो। आदित्य, वसु, रुद्र, सपैतृक विश्वेदेव आदि समस्त कार्यों के फलप्रद देवता तुम्हारे में सर्वदा स्थित रहते हैं।'

वेदों में कुम्भ-पर्व का वर्णन

कुम्भ-पर्व के सम्बन्ध में वेदों में अनेक महत्त्वपूर्ण मन्त्र मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि 'कुम्भ-पर्व' अत्यन्त प्राचीन और वैदिकधर्म से ओतप्रोत है। अब हम पाठकों के लाभार्थ चारों वेदों के कतिपय मन्त्र उद्धृत करते हैं—

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवभिन्न कुम्भभागा इन्द्रो अकृणुता स्वयुग्भिः॥
(ऋग्वेद, १०।८९।७)

'कुम्भ-पर्व में जानेवाला मनुष्य स्वयं अपने में फलरूप से प्राप्त होनेवाले दान-होमादि सत्कर्मों से काष्ठ काटनेवाले कुठारादि की तरह अपने पापों का प्रक्षालन करता है। जिस प्रकार गङ्गा-नहर आदि अपने तटों को नष्ट करती हुई प्रवाहित होती है उसी प्रकार कुम्भ-पर्व अपने पूर्वसञ्चित कर्मों से प्राप्त हुए शारीरिक पापों को नष्ट करता है और नूतन बनावटी पर्वत की तरह बादल को नष्ट-भ्रष्ट कर संसार में सुवृष्टि प्रदान करता है।'

'कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषिक्ता ।'

(ऋग्वेद, १२।३।२३)

'हे कुम्भ-पर्व ? तुम यज्ञीय वेदी में यज्ञीय आयुधों से घृत द्वारा तृप्त होने के कारण कष्टानुभव मत करो ।'

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भां असिञ्चतं सुरायाः ॥

(ऋग्वेद, १।८।९।२)

कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥

(शुक्लयजुर्वेद, १९।८७)

'कुम्भ-पर्व सत्कर्म के द्वारा मनुष्य को इहलोक में शारीरिक सुख देनेवाला और जन्मान्तरों में उत्कृष्ट सुखों को देनेवाला है ।'

आविशन्कलशꣳ सुतो विश्वाऽअर्षन्न भिश्रियः ।
इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥

(सामवेद, पू०, ६।३)

पूर्णः कुम्भोऽधिकाल अहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥

(अथर्ववेद, १९।५३।३)

'हे सन्तगण ! पूर्ण कुम्भ समय पर (बारह वर्ष के बाद) आया करता है जिसे हम अनेकों बार प्रयागादि तीर्थों में देखा करते हैं । कुम्भ उस समय को कहते हैं जो महान् आकाश में ग्रह-राशि आदि के योग से होता है ।'

और भी कहा है—

(क) 'चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि ।'

(अथर्व० ४।३४।७)

ब्रह्मा कहते हैं—'हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें ऐहिक तथा आमुष्मिक सुखों को देनेवाले चार कुम्भ-पर्वों का निर्माण कर चार स्थानों (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक) में प्रदान करता हूँ ।'

(ख) 'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ।'

(अथर्व० १६।६।८)

कुम्भपर्व या कुम्भोत्पत्ति की कथा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलशोत्पत्तिमुत्तमाम् ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे क्षीरोदो नाम सागरः ॥ १ ॥
आरब्धं मन्थनं तत्र देवैर्दानवपूर्वकैः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२॥
मूले कूर्मन्तु संस्थाप्य विष्णोर्बाहू च मन्दरे ।
एकत्र देवताः सर्वे बलिमुख्यास्तथैकतः ॥ ३ ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन् क्षीरोदे सागरोत्तमे ।
उत्पन्नं गरलं पूर्वं शम्भुना भक्षितं च तत् ॥ ४ ॥
अथ स्वास्थ्यं गते लोके प्रकथ्यन्तेऽद्य तानि हि ।
उत्पन्नानि च रत्नानि यानि तत्र महान्ति च ॥५॥
विमानं पुष्पकं पूर्वमुत्तमं हंसवाहनम् ।
नाग ऐरावतश्चैव पादपः पारिजातकः ॥ ६ ॥

वीणावाद्यान्तरं चैव रम्भा नृत्यगुणान्विता ।
मणिरत्नं कौस्तुभाख्यं बालचन्द्रस्तथैव च ॥ ७ ॥
कुण्डलानि धनुश्चैव गावः पञ्च शिवास्तथा ।
लक्ष्मीः सुरूपा यमुना सुशीला सुरभिस्तथा ॥ ८ ॥
उच्चैःश्रवाः समुत्पन्नो लक्ष्मीश्च वरवर्णिनी ।
तथा धन्वन्तरिर्देवो विश्वकर्मा कलाविदः ॥ ९ ॥
कलशश्च समुद्भूतो धन्वन्तरिकरोल्लसन् ।
मुखान्तं सुधया पूर्णः सर्वेषां हि मनोहरः ॥ १० ॥
अजितस्य पदाम्भोज कृपयैव समुद्गतम् ।
क्षीराब्धिलोडनोद्भूतं कलशान्तेन्द्ररत्नकम् ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा तु तत्क्षणादेव महाबलपराक्रमः ।
जयन्तोऽमृतमादाय गतो देवप्रचोदितः ॥ १२ ॥
देवकर्मसमालोच्य तदा दैत्यपुरोधसा ।
नागोच्छ्वासप्रव्यथिता दैत्याः शुक्रेण सूचिताः ॥१३॥
जग्मुस्ते पृष्ठतो लग्ना भीतः सोऽपि पलायितः ।
दिशो दश दिवारात्रं द्वादशाहं प्रपीड़ितः ॥ १४ ॥
दैत्यैर्गृहीतस्तद्धस्तात् तेनापि पुनरेव सः ।
अहं पिबेयं पूर्वं तु न त्वञ्चेति विचुक्रुधुः ॥ १५ ॥
एवं विवदमानेषु काश्यपेषु सुधाग्रहे ।
भगवान् मोहयित्वा तान् मोहिन्या विभजत् सुधाम् ॥१६॥

विवादे काश्यपेयानां यत्र यत्रावनिस्थले ।
कलशो न्यपतत्तत्र कुम्भपर्व तदोच्यते ॥ १७ ॥
गुर्वीन्द्वर्कस्वपुत्रैश्च कुम्भोऽरक्षि निपातितः ।
कलहाक्रान्तचेतोभिर्दैत्यैः शुक्रप्रचोदितैः ॥ १८ ॥
चन्द्रः प्रस्रवणाद्रक्षां सूर्यो विस्फोटनाद्दधौ ।
दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां शौरिर्देवेन्द्रजाद् भयात् ॥१९॥
सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ यत्र वत्सरे ।
सुधाकुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा ॥ २० ॥
देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः ।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादश संख्यया ॥ २१ ॥
तत्राघनुत्तये नृणां चत्वारो भुवि भारते ।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः ॥ २२ ॥
तान्येति यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते ।
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रङ्का धनाधिपान् ॥२३॥
पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धा भेद उच्यते ।
विष्णुद्वारे तीर्थराजेऽवन्त्यां गोदावरीतटे ॥
सुधाबिन्दुविनिक्षेपात् कुम्भपर्वेति विश्रुतम् ॥ २४ ॥

(स्कन्द पुराण)

'पूर्वकाल में पृथिवी के उत्तर-भाग में हिमालय के समीप 'क्षीरोद' नामक समुद्र के किनारे देवता और दानवों ने उसका मन्थन किया, जिसमें मन्थराचल 'मन्थन-दण्ड' था,

वासुकी 'नेती' थे, कच्छप-रूपधारी भगवान् मन्दराचल के पृष्ठ-भाग थे और भगवान् विष्णु उक्त मन्थन दण्ड को पकड़े हुए थे. पश्चात् उस क्षीर-सागर से चौदह* रत्न निकले। उन्हीं रत्नों में से अमृत-कुम्भ के निकलते ही देवताओं के इशारे से इन्द्रपुत्र 'जयन्त' अमृत कलश को छीनकर आकाश में उड़ गया। पश्चात् दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आदेशानुसार दैत्यों ने अमृत को वापिस लेने के लिए जयन्त का पीछा किया और घोर परिश्रम के बाद उन्होंने बीच रास्ते में ही जयन्त को पकड़ा। पश्चात् अमृत-कलश पर अधिकार जमाने के लिए देव-दानवों में बारह दिन तक अविराम युद्ध होता रहा। परस्पर इस मारकाट के समय में पृथिवी के चार स्थानों (प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक) पर कलश गिरा था, उस समय चन्द्रमा ने घट से प्रस्रवण होने से, सूर्य ने घट फूटने से, गुरु ने दैत्यों के अपहरण से एवं शशि ने देवेन्द्र के भय से घट की रक्षा की। कलह शान्त करने के लिए भगवान् ने मोहिनीरूप धारण कर यथाधिकार सबको अमृत बाँट कर पिला दिया। इस प्रकार देव-दानव का अन्त किया गया।

अमृत-प्राप्ति के लिये देव-दानवों में परस्पर बारह दिन पर्यन्त निरन्तर युद्ध हुआ था, अतः देवताओं के बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष के तुल्य होते हैं। कुम्भ भी बारह होते हैं। उनमें से चार कुम्भ पृथिवी पर होते हैं और अवशिष्ट आठ कुम्भ देवलोक में होते हैं, जिन्हें देवगण ही प्राप्त कर सकते हैं, मनुष्यों की वहाँ पहुंच नहीं है। जिस समय में चन्द्रादिकों ने कलश की रक्षा की थी,

---

*लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजात, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, गरल, पुष्पक, ऐरावत, पांचजन्य, शंख, रम्भा, कामधेनु, उच्चैःश्रवा और अमृत-कुम्भ।

उस समय की वर्तमान राशियों पर रक्षा करनेवाले चन्द्र सूर्यादिक ग्रह जब आते हैं, उस समय कुम्भ का योग होता है अर्थात् जिस वर्ष जिस राशि पर सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति का संयोग होता है उसी वर्ष उसी राशि के योग में जहाँ-जहाँ अमृत-कुम्भ गिरा था वहाँ-वहाँ कुम्भ-पर्व होता है।'

कुम्भ-पर्व का उद्देश्य

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार कुम्भ-पर्व के निर्णीत स्थानों में कुम्भ-योग के समय तत्तत्सम्प्रदाय सम्मानित साधु-महात्माओं के समवाय द्वारा संसार के सर्वविध कष्टों के निवृत्यर्थ देश, समाज, राष्ट्र, और धर्म आदि समस्त विश्व के कल्याण-सम्पादनार्थ निष्काम-भावनापुरस्सर वेदादि शास्त्रानुकूल अमूल्य दिव्य उपदेशों से जगत्कल्याण करना ही 'कुम्भ-पर्व' का महान् उद्देश्य है।

कुम्भ-पर्व का आध्यात्मिक रहस्य

कुम्भ-पर्व के विषय में आध्यात्मिक रहस्य पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जाता है, आशा है कि धार्मिक सज्जन इस पर विश्वास कर पर्व के समय स्नान, दान, यज्ञ तथा तप-आदि के आचरण तथा विद्वानों के उपदेश द्वारा अपना जन्म सफल करेंगे। जो गृहस्थ मनुष्य 'पंचाग्नि विद्या' को जानते हैं तथा जो वानप्रस्थी, संन्यासी या नैष्ठिक ब्रह्मचारिगण सांसारिक विषयवासनाओं से विरक्त होकर श्रद्धापूर्वक तप तथा सत्य-पालनादि का आचरण करते हैं वे उत्तरायण-मार्ग से अर्थात् अर्चिमार्ग से सूर्यलोक होते हुए 'ब्रह्मलोक' जाते हैं। वहाँ अनेक कल्प तक निवास कर पुनः जिस मार्ग से वे गए थे उसी

मार्ग से लौटकर इन्द्रादि लोकों में ही रहते हैं और वे भूलोक में नहीं आते। इन्द्रादि लोकों में रहते हुए सौभाग्यवश गुरूपदेश द्वारा ज्ञान-प्राप्ति हो जाने के कारण मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है जिससे वे इस संसार में नहीं आते हैं प्रत्युत ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। और जो साधारण गृहस्थजन ग्राम में ही रहते हुए (इष्ट) अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म तथा (पूर्त) वापी कूप-तड़ागादि प्रतिष्ठा तथा दान, यज्ञ आदि का आचरण करते हैं वे दक्षिणायन-मार्ग से अर्थात् धूम-मार्ग से 'चन्द्रलोक' जाते हैं वहाँ वे पुण्यक्षय पर्यन्त निवास कर फिर बादल आदि बनकर इस पृथ्वी पर औषध, तृण तथा वनस्पतिरूप में वृष्टि द्वारा पैदा होते हैं और पुनः पूर्व कर्म के अनुसार उत्तम या अधम योनि के जीव से भक्षित होकर वीर्य बनकर उस योनि में पैदा होते हैं। जो मनुष्य 'पञ्चाग्नि विद्या' आदि से तथा अग्निहोत्र, वापी, कूप, तड़ागादि प्रतिष्ठा, दान, यज्ञ आदि से भी वञ्चित रहते हैं वे कीट, पतङ्ग आदि की योनियों में जाते हैं और बार बार जन्म-मरण-जन्य क्लेश को भोगते हैं। इस प्रकार मरने के बाद मनुष्यों की उत्तम, मध्यम तथा अधम ये तीन गतियाँ उपनिषदों में वर्णित हैं। जो मनुष्य मरण से पहले ही गुरूपदेश द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त कर लेते हैं उनकी मरने के समय प्राणों के साथ आत्मा पूर्वोक्त मार्गों में से किसी भी मार्ग का अनुसरण नहीं करती, किन्तु हृदय में ही ब्रह्म में लीन हो जाती है। यह सर्वोत्तम गति ज्ञानियों के लिए उपनिषदों में बतलाई गई है। वस्तुतः पूर्ण-कुम्भ तथा अर्धकुम्भी पर्व मनाने का रहस्य यह है कि हमलोग इस पर्व पर दूर-दूर से अनेक स्थानों से हरद्वार, प्रयाग आदि पवित्र तीर्थों में आकर गङ्गास्नान से पवित्र होकर श्रेष्ठ विद्वानों के उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त करें तथा तप, सत्य, दान, यज्ञ आदि शुभ कर्मों का यथा-

धिकार यथारुचि आचरण करें, जिससे मृत्यु के बाद हमें सर्वोत्तम, उत्तम, या मध्यम गति प्राप्त हो और अधम गति कदापि न मिले।

शङ्का—पुराणों में जो समुद्र-मन्थन के समय अमृत-कुम्भ को लेकर धन्वन्तरि विष्णु का प्रगट होना और उसके लिए मनुष्य आयु के अनुसार बारह वर्षों तक देवासुर-संग्राम होना, चन्द्रमा द्वारा घट के प्रस्रवण से, सूर्य के द्वारा घट के फूटने से, गुरु के द्वारा दैत्यों के अपहरण से अमृत-कुम्भ की रक्षा करना, इत्यादि वृत्तान्त आये हैं इनका वास्तविक रहस्य क्या है ?

उत्तर—पर्व के समय उपस्थित संसारी जीव-समुदाय ही 'समुद्र' है, उसमें से प्रकट हुए अमृतरूपी तत्वज्ञान को जानने-वाले श्रेष्ठ विद्वान् ही भगवान् 'धन्वन्तरि विष्णु' हैं। अपने शरीर के अन्दर तमोगुण प्रधानरूप इन्द्रिय गण ही 'असुर' हैं, वे ही इन्द्रियाँ जब सत्वप्रधानस्वरूप हो जाती हैं तो वे 'देव' मानी जाती हैं। इस प्रकार अपने शरीर के अन्दर इन इन्द्रियों का जो परस्पर विरोध होता रहता है यही 'देवासुर संग्राम' है। मनुष्य को चाहिए कि 'वेदान्तशास्त्र' के अध्ययन तथा गुरूपदेश, सत्य, तप आदि के आचरण द्वारा अपने इन्द्रियों का निग्रह कर तामस भाव अथवा आसुरी सम्पत्ति पर विजय प्राप्त कर सात्विक भाव अर्थात् दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करे। ऐसा करने से ही मनुष्य 'अमृत कुम्भ' अर्थात् पूर्णज्ञान की प्राप्ति द्वारा 'मोक्ष' का भागी बन सकता है। यह पूर्णज्ञान अधिक से अधिक बारह वर्ष में मन्द-बुद्धि को भी प्राप्त हो सकता है और तीव्र तथा मध्यम बुद्धि के मनुष्य थोड़े समय में भी पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बारह वर्ष एक आनुमानिक समय रक्खा गया है।

अतः मनुष्य कुम्भ के समय यथारुचि श्रेष्ठ विद्वानों से 'ज्ञानदीक्षा' या सत्य, तप आदि आचरण का उपदेश लेकर बारह वर्ष तक उसका अभ्यास करता हुआ प्रथम मन के अधिष्ठातृदेव 'चन्द्रमा' की उपासना द्वारा मन को एकाग्र करे। फिर "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" (शु० य० ४०।१७) अर्थात् जो आदित्य-बिम्ब में विराजमान ब्रह्म है वह मैं ही हूँ, इस प्रकार अभ्यास करे। इस प्रकार के अभ्यास से गुरूपदेश द्वारा प्राप्त ज्ञानरूपी अमृत-कुम्भ का प्रस्रवण तथा फूटना अर्थात् नाश नहीं हो सकता, अतः वह ज्ञान सदा अक्षय रहताहै। पुराणों में जो बारह स्थानों में कुम्भ पर्व माने गए हैं वे अपने शरीर के अन्दर '५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ मन तथा १ शरीर ही अमृतकुम्भरूपी पूर्णज्ञानप्राप्तिसाधक होने के कारण कुम्भ-पर्व के बारह स्थान माने गए हैं। कुम्भपर्व में सूर्य, चन्द्रमा तथा गुरु के संयोग होने का यही मुख्य रहस्य है।

कुम्भपर्व के प्रवर्त्तक

जिस 'कुम्भ-पर्व' का उल्लेख वेदों और पुराणों में मिलता है, उसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में तो किसी को सन्दिग्ध होने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सकता। किन्तु यह बात अवश्य विचारणीय है कि—कुम्भ मेले का धार्मिकरूप में संसार के लोगों में प्रसार करने का श्रीगणेश किसने किया? इस विषय में बहुत अन्वेषण करने पर सिद्ध होता है कि कुम्भमेले को प्रवर्त्तित करने वाले भगवान् शङ्कराचार्य हैं। अतः इस पर्व के प्रवर्त्तक आद्य शङ्कराचार्य ही हैं। उन्होंने कुम्भ-पर्व के प्रचार की व्यवस्था केवल धार्मिक संस्कृति को सुदृढ़ रखने के लिए तथा जगत्कल्याण की दृष्टि से किया था। उन्हीं के आदर्शानुसार

अद्यावधि कुम्भपर्व के चारों सुप्रसिद्ध तीर्थों में सभी सम्प्रदायों के साधु-महात्मागण देश-काल-परिस्थित्यनुरूप लोककल्याण की दृष्टि से धर्म-रक्षार्थ धर्म का प्रचार करते हैं जिससे सभी जाति और सभी सम्प्रदाय का कल्याण होता है।

भगवान् आद्य शङ्कराचार्यजी के कुम्भ-प्रवर्त्तक होने के कारण ही आज भी कुम्भ का मेला मुख्यतः साधुओं का ही माना जाता है। वस्तुतः साधु-मण्डली ही कुम्भ का जीवन है। भगवान् शङ्कराचार्य ने जिस महान् सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए कुम्भपर्व को प्रवर्त्तित किया था, आज उसमें आवश्यकता से अधिक जो कमी आ गई है वह किसी से छिपी नहीं है। अतः प्रत्येक मनुष्य को विशेषतः शङ्कराचार्यस्वरूप साधु-महात्माओं को चाहिए कि पुनः भगवान् शङ्कराचार्यजी के सदुद्देश्य की पूर्ति में मनसा, कर्मणा, वाचा प्रवृत्त होकर अपना और देश का कल्याण कर कुम्भपर्व के महत्त्व को सुरक्षित रक्खें।

पूर्णकुम्भ और अर्धकुम्भ

हिन्दू-समाज में प्राचीनकाल से ही कुम्भ-पर्व मनाने की प्रथा चली आ रही है। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चारों स्थानों में क्रमशः बारह-बारह वर्ष में 'पूर्ण-कुम्भ' का मेला लगता है और हरिद्वार तथा प्रयाग में 'अर्ध-कुम्भ' पर्व भी मनाया जाता है। किन्तु यह 'अर्धकुम्भ-पर्व' उज्जैन और नासिक में नहीं होता है। अर्धकुम्भ-पर्व हरिद्वार और प्रयाग में ही क्यों मनाया जाता है? और यह उज्जैन एवं नासिक में क्यों नहीं मनाया जाता? इसके बारे में कोई शास्त्रीय विशेष प्रमाण प्राप्त नहीं होते, अतः 'अर्धकुम्भ-पर्व' का मेला शास्त्रीय दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता। यह किसी कारण सम्प्रदाय-विशेष के उद्योग

से चालू हो गया है जो आज तक उसी रूप में जीता-जागता दिखाई दे रहा है। 'अर्धकुम्भ-पर्व' के प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि—'मुगल-साम्राज्य में हिन्दूधर्म पर जब अधिक कुठाराघात होने लगा उस समय चारों दिशाओं के शङ्कराचार्यों ने हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ हरिद्वार और प्रयाग में साधु-महात्माओं एवं बड़े-बड़े विद्वानों को बुलाकर विचार-परामर्श किया था तभी से हरिद्वार और प्रयाग में 'अर्ध-कुम्भी' मेला होने लगा। इसी प्रकार अर्ध-कुम्भी सम्बन्ध की और भी मिलती-जुलती अनेक दन्तकथाएँ सुनने में आती हैं, किन्तु उनमें कौन ठीक है इसका निर्णय करना कठिन है।

शास्त्रों में जहाँ 'कुम्भ-पर्व' की चर्चा प्राप्त है वहाँ 'पूर्ण-कुम्भ' का ही उल्लेख मिलता है। देखिये, अथर्ववेद का निम्नलिखित मन्त्र भी 'पूर्ण-कुम्भ' की ही पुष्टि करता है—

पूर्णः कुम्भोऽधिकाल अहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्॥
(१९।५३।३)

'हे सन्तगण! पूर्णकुम्भ समय पर बारह वर्ष के बाद आता है, जिसे हम अनेकों बार हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार तीर्थस्थानों में देखा करते हैं। कुम्भ उस काल-विशेष को कहते हैं, जो महान् आकाश में ग्रह-राशि आदि के योग से होता है।'

यद्यपि वेदादि सच्छास्त्रों के सिद्धान्तानुसार केवल 'पूर्ण-कुम्भ' ही सिद्ध होता है, तथापि पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित 'अर्धकुम्भ-पर्व' को भी हमें न भूलना चाहिये। क्योंकि 'अर्ध-कुम्भ-पर्व' का उद्देश्य 'पूर्ण-कुम्भ' की तरह विशेष पवित्र और लोकोपकारक

है। लोकोपकारक-पर्वों से धर्म के प्रचार के साथ-साथ देश का और समाज का महान् कल्याण सुरक्षित है।

कुम्भ-पर्व के चार तीर्थस्थान

कुम्भ का पर्व हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार तीर्थस्थानों में मनाया जाता है। ये चारों ही एक से एक बढ़कर परम पवित्र तीर्थ हैं। इन चारों तीर्थों में प्रत्येक बारह वर्ष के बाद कुम्भ-पर्व होता है। लिखा भी है—

गङ्गाद्वारे प्रयागे च धारा-गोदावरीतटे।
कुम्भाख्येयस्तु योगोऽयं प्रोच्यते शङ्करादिभिः॥

'गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, धारानगरी (उज्जैन) और गोदावरी (नासिक) में शङ्करादि देवगण ने 'कुम्भयोग' कहा है।'

चारों कुम्भों के पर्व-दिन और स्नान-दिन

हरिद्वार आदि चारों स्थानों के कुम्भ-पर्व का अलग-अलग समय तथा महत्त्व आदि ज्ञातव्य विषयों का संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

(१) हरिद्वार

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ।
गङ्गाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥
(स्क० पु०)

'जिस समय बृहस्पति कुम्भराशि पर स्थित हो और सूर्य मेषराशि पर रहे, उस समय गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में कुम्भ-योग होता है।'

अथवा

वसन्ते विषुवे चैव घटे देवपुरोहिते।
गङ्गाद्वारे च कुम्भाख्यः सुधामेति नरो यतः॥

हरिद्वार में कुम्भ के तीन स्नान होते हैं। यहाँ कुम्भ का प्रथम स्नान शिवरात्रि से प्रारम्भ होता है। द्वितीय स्नान चैत्र की अमावास्या को होता है। तृतीय स्नान (प्रधानस्नान) चैत्र के अन्त में अथवा वैशाख के प्रथम दिन में अर्थात् जिस दिन बृहस्पति कुम्भराशि पर और सूर्य मेषराशि पर हो उस दिन कुम्भस्नान होता है। इन तीनों स्नानों में सर्वप्रथम स्नान निरञ्जनी अखाड़े का, द्वितीय स्नान निर्वाणी अखाड़े का और तृतीय स्नान जूना अखाड़े का होता है।

उक्त तीनों सम्प्रदायों के स्नान करने के बाद अन्य समस्त सम्प्रदाय वाले साधुओं और गृहस्थों का स्नान होता है।

(२) प्रयाग

मेषराशिंगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावास्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥
(स्क० पु०)

'जिस समय बृहस्पति मेषराशि पर स्थित हो तथा चन्द्रमा और सूर्य मकर राशि पर हो तो उस समय तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ-योग होता है।'

अथवा

मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥

प्रयाग में कुम्भ के तीन स्नान होते हैं। यहाँ कुम्भ का प्रथम स्नान मकरसंक्रान्ति (मेषराशि पर बृहस्पति का संयोग होने पर) से प्रारम्भ होता है। द्वितीय स्नान (प्रधान स्नान) माघ कृष्णा मौनी अमावास्या को होता है। तृतीय स्नान माघ शुक्ला वसन्तपञ्चमी को होता है। इन तीनों स्नानों में सर्वप्रथम स्नान निर्वाणी अखाड़े का, द्वितीय स्नान निरञ्जनी अखाड़े का और तृतीय स्नान जूना अखाड़े का होता है। पश्चात् समस्त सम्प्रदाय के लोगों का होता है।

(३) उज्जैन (अवन्तिका)

मेषराशिंगते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ।
उज्जयिन्यां भवेत् कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः॥

'जिस समय सूर्य मेषराशि पर हो और बृहस्पति सिंहराशि पर हो तो उस समय उज्जैन में कुम्भयोग होता है।'

अथवा

घटे: सूरि शशी सूर्यः कुह्वां दामोदरे (कार्तिके) यदा।
धारायां च तदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः॥

उज्जैन में कुम्भ के निमित्त सिर्फ एक ही दिन स्नान होता है। यहाँ पर वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में अर्थात् जिस दिन सूर्य मेष राशि पर हो और बृहस्पति सिंहराशि पर हो तो उज्जैन में कुम्भ-स्नान का लग्न आता है। अतः यहाँ पर निर्वाणी, निरञ्जनी तथा जूना इन तीनों अखाड़ों के साधुओं का और अन्य समस्त सम्प्रदाय के लोगों का एक साथ ही 'शिप्रा' नामक नदी में स्नान होता है।

उज्जैन यह 'उज्जयिनी' शब्द का अपभ्रंश है। उज्जयिनी का प्राचीन नाम 'विशाला' अथवा 'अवन्ती' है। महाभारत और स्कन्दपुराणादि में इसके उज्जयिनी, अवन्ती, अवन्तिका और धारा आदि नाम मिलते हैं।

(४) नासिक (गोदावरी)

मेषराशिंगते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ।
गोदावर्यां भवेत् कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः॥

(स्क० पु०)

'जिस समय सूर्य मेष राशि पर हो और बृहस्पति सिंहराशि पर हो तो उस समय गोदावरी (नासिक) में मुक्तिप्रद कुम्भयोग होता है।'

अथवा

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रर्क्षगस्तथा।
गोदावर्यां तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले॥

नासिक में कुम्भ के तीन स्नान होते हैं। यहाँ पर कुम्भ का प्रथम स्नान (प्रधान स्नान) श्रावण (सिंह राशि पर बृहस्पति, मङ्गल और सूर्य का संयोग होने से सिंहस्थ योग होने पर) में होता है। द्वितीय स्नान भाद्रपद की अमावास्या को होता है। तृतीय स्नान कार्तिक शुक्ला देवोत्थान एकादशी को होता है। इन तीनों स्नानों में सर्वप्रथम स्नान जूना अखाड़े का, द्वितीय स्नान निर्वाणी अखाड़े का और तृतीय स्नान निरञ्जनी अखाड़े का होता है। पश्चात् अन्य सम्प्रदाय के लोगों का स्नान होता है।

नासिक में कुम्भ का मेला लगातार चार मास तक रहता है। शास्त्रों में आषाढ़ मास की शुक्ला एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशी (देवोत्थान एकादशी) तक साधुओं के लिए 'चातुर्मास्य व्रत' करने का समय निर्णीत किया है। यही चार मास नासिक के कुम्भ का समय होता है। अतः नासिक के कुम्भपर्व के अवसर पर अधिकाधिक संख्या में साधु-महात्मागण नासिक में जाकर वहाँ की शोभावृद्धि में हाथ बँटाते हैं।

यहाँ पर कुम्भ-स्नान के लग्न आने पर सभी साधु-संन्यासीगण त्र्यम्बकेश्वर महादेव के समीपवर्त्ती 'कुशावर्त घाट' पर स्नान करते हैं और वैष्णव सम्प्रदायवादी वैरागीगण नासिकान्तर्गत पञ्चवटी के 'रामघाट' पर स्नान करते हैं।

विशेष

प्रयाग और हरिद्वार में पूर्णकुम्भ और अर्धकुम्भी ये दो मेले होते हैं, किन्तु उज्जैन (अवन्तिका) और नासिक (गोदावरी) में केवल पूर्णकुम्भ का ही एक मेला होता है। इन दोनों स्थानों में 'अर्धकुम्भी' का मेला नहीं होता है।

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चारों स्थानों में प्रत्येक बारहवें वर्ष में कुम्भ का योग पड़ता है। किन्तु इन चारों स्थानों के कुम्भ पर्व का क्रम इस प्रकार निर्धारित है जिससे कि तत्तत्स्थानों में प्रत्येक तीन वर्ष के बाद कहीं न कहीं कुम्भ-पर्व होता ही रहता है। जिस वर्ष प्रयाग में कुम्भ-पर्व का मेला होता है उसके ठीक तीन वर्ष बाद उज्जैन में तथा उज्जैन के कुम्भपर्व के ठीक तीन वर्ष बाद हरिद्वार में कुम्भपर्व या कुम्भमेला होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान में तीन-तीन वर्ष के कुम्भ-पर्व के व्यवधान से पुनः प्रयाग में बारह वर्ष के बाद कुम्भपर्व का योग

आता है। इनके मध्य में प्रत्येक छः-छः वर्ष के अनन्तर केवल हरिद्वार और प्रयाग में अर्धकुम्भी होती है। हरिद्वार की अर्ध-कुम्भी के साल नासिक का कुम्भ होता है और प्रयाग की अर्ध-कुम्भी के साल उज्जैन का कुम्भ होता है।

कुम्भ-स्नान* का महत्त्व

हरिद्वार के सम्बन्ध में—

कुम्भराशिंगते जीवे तथा मेषे गते रवौ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम्॥

'कुम्भराशि में बृहस्पति हो तथा मेष राशि पर सूर्य हो तो हरिद्वार के कुम्भ में स्नान करने से मनुष्य पुनर्जन्म से रहित हो जाता है।'

प्रयाग के सम्बन्ध में—

सहस्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च।
वैशाखे नर्मदा कोटिः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(स्कन्दपुराण)

---

*तान्येव यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते।
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रङ्का धनाधिपान्॥

(स्कन्दपुराण)

'जो मनुष्य कुम्भयोग में स्नान करता है, वह अमृतत्व (मुक्ति) की प्राप्ति करता है। जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य सम्पत्ति-शाली को नम्रता से अभिवादन करता है, उसी प्रकार कुम्भपर्व में स्नान करनेवाले मनुष्य को देवगण नमस्कार करते हैं।'

'कार्तिक महीने में एक हजार बार गङ्गा में स्नान करने से, माघ में सौ बार गङ्गा में स्नान करने से और वैशाख में करोड़ बार नर्मदा में स्नान करने से जो फल होता है वह प्रयाग में कुम्भ पर्व पर सिर्फ एक ही बार स्नान करने से प्राप्त होता है।'

विष्णुपुराण में भी लिखा है—

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नानेन तत्फलम् ॥

'हजार अश्वमेध यज्ञ करने से, सौ वाजपेय यज्ञ करने से और लाख बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल केवल प्रयाग के कुम्भ के स्नान से प्राप्त होता है।'

उज्जैन के सम्बन्ध में—

कुशस्थली महाक्षेत्रं योगिनां स्थानदुर्लभम् ।
माधवे धवले पक्षे सिंहे जीवे अजे रवौ ॥
तुलाराशौ निशानाथे पूर्णायां पूर्णिमातिथौ ।
व्यतीपाते तु सञ्जाते चन्द्रवासरसंयुते ।
उज्जयिन्यां महायोगे स्नाने मोक्षमवाप्नुयात् ॥
(स्क० पु० अवन्तीखण्ड)

अन्यत्र भी लिखा है—

'धारायां च तदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः ।'

नासिक के सम्बन्ध में—

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम् ।
सकृद् गोदावरीस्नानं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥

'जिस समय बृहस्पति सिंह राशि पर हो उस समय गोदावरी में केवल एक बार स्नान करने से मनुष्य साठ हजार वर्षों तक गङ्गा स्नान करने के सदृश पुण्य प्राप्त करता है।'

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है—

अश्वमेधफलं चैव लक्षगोदानजं फलम् ।
प्राप्नोति स्नानमात्रेण गोदायां सिंहगे गुरौ ॥

'जिस समय बृहस्पति सिंह राशि पर स्थित हो उस समय गोदावरी में केवल स्नानमात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का तथा एक लक्ष गो-दान करने का पुण्य प्राप्त करता है।'

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

यस्मिन् दिने गुरुर्याति सिंहराशौ महामते ।
तस्मिन् दिने महापुण्यं नरः स्नानं समाचरेत् ॥
यस्मिन् दिने सुरगुरुः सिंहराशिगतो भवेत् ।
तस्मिंस्तु गौतमीस्नानं कोटिजन्माघनाशनम् ॥

तीर्थानि नद्यश्च तथा समुद्राः
क्षेत्रारण्यरत्नानि तथाऽऽश्रमाश्च ।
वसन्ति सर्वाणि च वर्षमेकं
गोदातटे सिंहगते सुरेज्ये ॥

कुम्भ-मेला

कुम्भ भगवान् का मन्दिर है। इसकी झाँकी हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चार स्थानों में प्रत्येक बारहवें वर्ष में होती है। पुराणों में 'कुम्भपर्व' की स्थापना बारह की संख्या में की

गयी है, जिनमें से चार मृत्युलोक के लिए और आठ देवलोकों के लिए हैं।

देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादश संख्यया ॥
पापापनुत्तये नृणां चत्वारि भुवि भारते।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः ॥

भूमण्डल के मनुष्यमात्र के पाप को दूर करना ही कुम्भ की उत्पत्ति का हेतु है। यह पर्व प्रत्येक बारहवें वर्ष हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक—इन चारों स्थानों में होता रहता है। इन पर्वों में भारत के सभी प्रान्तों से समस्त सम्प्रदायवादी स्नान ध्यान, पूजा-पाठादि करने के लिए आते हैं। प्रधानतया कुम्भावसर पर भारत के कोने-कोने से सन्त-महन्त अधिक रूप में आते हैं, जगह-जगह उनके विशाल अखाड़े और पण्डाल देखते ही बनते हैं। सभी अखाड़े वाले पर्व के दिन बड़ी धूम-धाम के साथ जुलूस निकालते हैं और शहर भर में प्रदक्षिणा करते हैं। जुलूस में अपने-अपने वित्त के अनुसार हाथी, घोड़े, ऊँट, पालकी, तामजाम, मोटर आदि को सजा-धजा कर जनता का मनोरञ्जन करते हैं। सच तो यह है कि कुम्भ-पर्व की तरह साधु, सन्त, महन्तों का समवाय अन्यत्र नहीं मिलता। इतना ही नहीं, जगह जगह भण्डारे औषधालय, सेवासंघ आदि खुले रहते हैं। उनमें बाबा काली कमलीवाला पञ्चायती क्षेत्र ऋषीकेशका नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिसका सुप्रबन्ध सारे उत्तराखण्ड और प्रत्येक कुम्भादि पर्व पर होता है जिससे दीन, हीन, क्षीण लाखों प्राणियों का उदरपोषण होता है एवं सब प्रकार के सुख-साधनों का सुप्रबन्ध रहता है। कुम्भ के अवसर पर बड़े-बड़े सेठ साहूकार

साधु, महात्मा लोग दूर-दूर से आकर अनेक यज्ञ-यागादि कर संसार का कल्याण करते हैं। इस पर्व में एक महत्त्व की बात यह है कि इसमें काशी जैसे विद्याकेन्द्र से तथा अन्य विद्यापीठों से बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान्, महामहोपाध्याय, व्याख्यानवाचस्पति, शास्त्रार्थमहारथी एकत्र होते हैं और वे लोग बड़ी-बड़ी सभा-सुसाइटी में निमन्त्रित होकर व्याख्यान और शास्त्रार्थ द्वारा अपने-अपने मत की पुष्टि करते हैं।

कुम्भ-मेले में देश-देशान्तर के व्यापारीगण नानाप्रकार के व्यवसायों से सर्वसाधारण जनता के सुखसाधनार्थ विशेष व्याप्त मालूम पड़ते हैं। कहीं पुस्तकों के व्यापारी अपनी पुस्तकों की लाइन सजाए हुए, कहीं मिष्टान्न भण्डारों की श्रेणी मीलों तक शोभायमान, कहीं विविध साधनों सहित सरकारी कैम्प, कहीं टेलीफोन और तार डाक आदि के विभाग, कहीं हाथियों के झुण्ड, कहीं घोड़ों की खन खन, कहीं स्वाहाकारों की भरमार, कहीं संगीत की सुमधुर ध्वनियाँ कर्णकुहरों को बलात् खींचे देती हैं। कहीं 'वन्देमातरम्' के नारे, कहीं 'हर हर महादेव' की गगनभेदी तुमुल शब्द-राशियाँ चञ्चल मानस को भी स्थिर किए देती हैं। कहीं 'रामचरितमानस' की मनोहर कथाएँ, कहीं 'श्रीमद्भागवत', भगवद्गीतादि शास्त्रोंके दार्शनिक गम्भीर विचार नास्तिकों के भी हृदय में स्थान बना ही देते हैं। इन बातों की ओर दृष्टि डालते हुए कुम्भ का मेला अवश्यमेव सर्वजनस्पृहणीय होता है।

कुम्भ-पर्व में हमारा कर्तव्य

१—कुम्भ-पर्व में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह कुम्भ-पर्व-स्थान में जब तक रहे तब तक निष्कपट, सरल हृदय, स्वार्थशून्य और धर्मपरायण होकर रहे।

२—भगवान् में श्रद्धा-भक्ति रखना ही सुख-शान्ति प्राप्ति का सच्चा साधन है। अतः उठते-बैठते, जागते-सोते, खाते-पीते सभी अवस्थाओं में भगवान् का स्मरण करना चाहिये।

३—यथाशक्ति परोपकारार्थ प्राणिमात्र की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये।

४—प्राणिमात्र में गुण-दोष स्वाभाविक होते हैं, इस दृष्टि से स्वयं अपने में गुण और दोष दोनों की कल्पना कर भूलकर भी दूसरे का दोष नहीं देखना चाहिये।

५—कुम्भ-तीर्थस्थल में पहुँच कर यथानियम, यथाधिकार सबको दैनिक तीर्थस्नान, देवमन्दिरों का दर्शन, सन्ध्योपासन, तर्पण, नित्य हवन, पञ्च महायज्ञ, बलिवैश्वदेव, देवपूजन और वेदपुराणादि का स्वाध्याय करना चाहिये।

६—भूलकर भी तीर्थ की सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिए।

७—मनसा, कर्मणा, वाचा ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिये।

८—सर्वदा समस्त इन्द्रियों को अपने वश में रखते हुए क्रोध से बचना चाहिये—'क्रोधः पापस्य कारणम्'।

९—सर्वदा तेल, पान, भाँग, अफीम, गाँजा आदि मादक वस्तुओं का परित्याग करना चाहिये।

१०—यथाशक्ति दीन-दुःखियों की अन्न-वस्त्रादि से सहायता करनो चाहिये।

११—यज्ञ-यागादि एवं धार्मिक कृत्यों में मुक्त हस्त होकर दान देना चाहिये।

१२—नियत समय में साधु-महात्मा एवं विद्वानों के दर्शन और उपदेश द्वारा अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिये।

१३—सर्वदा सत्य भाषण करना चाहिये।

१४—खान-पान, रहन-सहन आदि सात्विक होना चाहिये।

१५—एक समय फलाहार और एक समय अन्नाहार करना चाहिये।

१६—तीर्थ में दान नहीं लेना चाहिये।

१७—जिस तीर्थस्थान में मनुष्य जाय उसे वहाँ के महत्त्व से अवश्य परिचित होना चाहिये।

१८—सूर्योदय के पूर्व उठना चाहिये और रात्रि में यथा-समय शयन करना चाहिये।

१९—दिन में भूलकर भी नहीं सोना चाहिये।

२०—यथासाध्य तीर्थ में सपत्नीक ही जाना चाहिये।

२१—तीर्थ में यज्ञ-यागादि धर्मानुष्ठानों के करने का तथा भागवतादि पुराणों के श्रवण का बहुत फल लिखा है। अतः यथाशक्ति सबको धार्मिक कार्य में हाथ बँटाना चाहिये।

२२—तीर्थस्थान में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इन पाँचों नियमों का तथा शौच-सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान इन पाँचों नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिये।

२३—अपने इष्ट-देवता का सर्वदा स्मरण करना चाहिये।

२४—तीर्थ में जाकर भूलकर भी किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करना चाहिये।

२५—तीर्थस्थान में अपने ही अन्न, वस्त्र का उपभोग करना चाहिये। दूसरे का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये।

२६—तेल और साबुन का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

२७—तीर्थ में चमड़े का जूता नहीं पहनना चाहिये और यदि आवश्यक ही हो तो कपड़े का जूता पहनना चाहिये।

२८—कुम्भपर्व में घृत का कलश भरकर घृत का कुम्भ दान करना चाहिये।

२९—यथाशक्ति साधु-महात्माओं को तथा ब्राह्मणोंको भोजन करा कर ही स्वयं भोजन करना चाहिये।

३०—कुम्भपर्व में स्नान करते समय कुम्भ के स्वरूप का ध्यान और कुम्भ-प्रार्थना करके ही स्नान करना चाहिये।

३१—कुम्भ पर्व में स्नान करने के पूर्व कलश (कुम्भ) मुद्रा दिखला कर और उसमें अमृत की भावना करके ही स्नान करना चाहिये।

कुम्भ और साधु-समाज

कुम्भ-पर्व या कुम्भ-मेला प्रधानतया साधु-महात्माओं का मेला या सम्मेलन समझा जाता है। प्राचीनकाल से ही हरिद्वार आदि चारों तीर्थस्थानों में कुम्भपर्व के अवसर पर भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के साधु-महात्माओं का समागम होता चला आ रहा है। इन साधु-महात्माओं के समूह को 'जमात' अथवा 'अखाड़ा' कहते हैं। प्रायः भारत के प्रत्येक प्रान्तों में विभिन्न मत के साधु महात्माओं के अनेक अखाड़े या मठ विद्यमान हैं। इन अखाड़ों के महन्तों के पास बड़ी-बड़ी जमीन्दारियाँ तथा विपुल सम्पत्ति है। राजा-महाराजाओं जैसी इनकी ठाठ-बाट होती है और धार्मिक जनता में इनका विशेष प्रभाव और मान्य होता है।

कुम्भ-पर्व में प्रायः सभी अखाड़े वाले बड़े उत्साह से अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के साथ सम्मिलित होकर कुम्भ के मेले में जीवन-सञ्चार उत्पन्न कर कुम्भ-मेले की शोभा को विशेषरूप से बढ़ा देते हैं। कुम्भ-पर्व में प्रधान स्नान के दिन समस्त सम्प्रदाय के साधु-महात्मा अपना-अपना दल बना कर अत्यन्त दर्शनीय जुलूस तैयार करते हैं जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, पालकी, छत्र, चमर, बन्दूक, तलवार, भाला, बरछी और स्व-सम्प्रदाय-विशेष के झण्डे तथा अपने-अपने उपास्यदेवकी मूर्ति तथा भगवान् शङ्कराचार्य की मूर्ति आदि सामग्रियाँ होती हैं। कुम्भ-मेलेमें साधु-महात्माओं के ये जुलूस विशेष दर्शनीय होते हैं। ऐसा शुभावसर मनुष्य के जीवन में बार-बार नहीं आता है।

कुम्भ-पर्व के अवसर पर साधु-समाज के प्रत्येक समुदाय में परस्पर प्रथम स्नान या अग्रस्नान के लिए पहले बहुत झगड़े हुआ करते थे। सन् १७६० ई० में हरिद्वार में कुम्भपर्व के स्नान के अन्तिम दिन १० अप्रैल को सन्यासी और वैरागियों में उग्ररूप से बहुत देर तक झगड़ा होता रहा जिसके फलस्वरूप दोनों संप्रदाय के लगभग १८०० (एक हजार आठ सौ) आदमी मर गये थे। इसके अनन्तर सन् १९७५ ई० में पुनः हरिद्वार में सिख और सन्यासियों में प्रथम स्नान को लेकर भीषण झगड़ा हो गया था जिसमें ५०० (पाँच सौ) साधु मरे थे। तभी से सरकार ने इन झगड़ों को मिटाने के लिए साधु-सम्प्रदाय में प्रथम स्नान करने का एक खास नियम बना दिया है, जिसके अनुकूल सभी सम्प्रदाय के साधु-महात्मा यथानियम स्नान कर कुम्भ-पर्व का आनन्द लेते हैं।

कुम्भ-पर्व के सम्बन्ध में अनेक दन्त-कथाएँ

कुम्भ-पर्व का प्रचलन कब से प्रारम्भ हुआ, इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं मिलता है। कुम्भ-पर्व के सम्बन्ध में कुछ-कुछ वेदों में और विशेष कर पुराणों में वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में तो इसका सर्वथा अभाव सा ही पाया जाता है। कुम्भ-पर्व के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ सुनने में आती हैं, जिनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

१—कुछ लोग कहते हैं—भगवान् आद्य शङ्कराचार्य जी ने कुम्भ-पर्व की स्थापना की, पश्चात् उनकी शिष्य-मण्डली ने 'कुम्भ' को अपने धर्म-प्रचार का मुख्य साधन समझ कर इसका विस्तार किया, जिसके फलस्वरूप आज भी कुम्भ-पर्व का मेला बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

२—कुछ लोग कहते हैं—सनक-सनन्दनादि महर्षियों की जमात हरिद्वार तथा प्रयागादि तीर्थों में १२-१२ वर्ष पर उपस्थित होती थी, तभी से कुम्भ-पर्व मनाया जाता है।

३—कुछ लोग कहते हैं—योगी लोगों के अभ्यास की अवधि १२ वर्ष होती है अतः उन्होंने १२ वर्ष पर अपने साधकों के मिलन की सुविधा के लिए हरिद्वारादि तीर्थों में कुम्भ-पर्व का प्रचार किया।

४—कुछ लोग कहते हैं—जब गरुड़ समुद्र से विष्णुलोक में अमृत-कुम्भ को ले जाते हुए हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार स्थानों में ठहरे थे, तभी से ये चार स्थान कुम्भ के कहे जाते हैं।

५—कुछ लोग कहते हैं—समुद्र-मन्थन के समय में प्रादुर्भूत

अमृत-कुम्भ का बँटवारा तीर्थराज प्रयाग में हुआ था उसी के स्मृतिरूप में कुम्भ-पर्व मनाया जाता है।

६—कुछ लोग कहते हैं—कुम्भ-पर्व साधु-महात्माओं का धर्म-सम्मेलन या धर्मपरिषत् है।

७—कुछ लोग कहते हैं—यह बौद्धों की धर्मपरिषत् या विरासत है।

धार्मिक जगत् और कुम्भ

वर्त्तमान दुस्तर्क कलङ्क पङ्काभिव्याप्त वसुधा के ओर-छोर तक अब भी किसी न किसी रूप में अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक उस परम प्रभु की व्यापक शासन शक्ति धर्म रूप से निर्बाध दृष्टिगोचर हो रही है। निकट भूत में ऐहिक तत्त्वमात्र सिद्धान्तवादी कतिपय मतप्रचारकों के पट्टशिष्यों ने तो इसकी परिभाषा ही बदलने का साहस कर डाला था। परन्तु भागवत-शक्ति का परिवर्तन तथा परिवर्द्धन भगवदधीन ही है, अतः यह सिद्धान्त किसी न किसी तरह सबको मानना ही पड़ा। जनता जनार्दन के विपथीकरणार्थ विविध प्रयत्नों के होते हुए भी आज ग्रहण के दिन सैकड़ों कोस के यात्री जिन्हें विविध कष्टों का अनुभव पदे पदे करना पड़ता है फिर भी लाखों की संख्या में 'हर हर महादेव' का नारा लगाते हुए देखे जाते हैं अधिकाधिक उपायों से सुप्रबन्ध की चेष्टाओं के बावजूद तिलभर भी जगह खाली नहीं दीखती। बड़े-बड़े धर्मघातक प्रचारकों के अधार्मिक आन्दोलनों तथा प्रचारों का लेशमात्र भी प्रभाव जनता के हृदयस्थली में संक्रान्त नहीं हो पाता। वहाँ तो वैदिक-वर्णाश्रममर्यादानुसार वेदशास्त्रसिद्धान्तानुसार अपनी सत्परम्परानुसार "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" का ही मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयोग दिखलाई पड़ता है। वर्णाश्रमियों

की सुदृढ़ता का ही फल है कि परम पिता जगदीश्वर भी सदेह धरातल पर अवतीर्ण होकर सज्जन साधुरक्षा एवं दुष्टों का संहार कर भू-भार लघूकरण में अग्रसर होते हैं। जैसा कि--

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इन पदों से सुस्पष्ट है। धर्म-महामन्दिर का ही एक महान् स्तम्भ पर्व है। नानाप्रकार के पर्वों का सर्जन भी धार्मिक विद्वानों द्वारा ही हुआ था। सबके मूल में कोई न कोई अलौकिक विशेषता वर्त्तमान रहती है, जिसे विचारशील ही समझ पाते हैं। इन्हीं महापर्वों में एक कुम्भ-पर्व भी है जो कि भारत के हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार स्थानों में मनाया जाता है। इन चारों स्थानों में कुम्भ-महापर्व पर लाखों प्राणियों का विशाल समागम क्या ही विलक्षण होता है। देश के बड़े से बड़े महात्मा, विद्वान् तथा उपदेशक जनों के दर्शन एवं सत्सङ्ग का अनायास लाभ हो जाता है। प्राचीन काल में भी देश के महात्माओं, शुभचिन्तकों तथा राष्ट्र के कर्णधारों का सम्मेलन किसी किसी विशेष अवसर पर हुआ ही करता था, जिसके द्वारा सर्व-सिद्धान्त-सिद्ध वस्तुस्थितियों का प्रचार कर जनता के कल्याणार्थ प्रयत्न किए जाते थे।

आज भी ऐसे विराट् सङ्गमों की आवश्यकता सिद्ध करना अपनी अल्पज्ञता का उदाहरण देना है। आज तो इनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। जब कि सनातनी जगत् पर चारों तरफ से

आलोचनाओं के कटु-प्रहार हो रहे हों, राष्ट्र के कर्णधारों की वक्रदृष्टि केवल विदेशी सभ्यता के समानयन पर ही लगी हो, धर्म तथा संगठन के नाम पर सहस्रों प्राणी कारावद्धता का अनुभव कर रहे हों, प्रातिपदिक धर्मावनति दृष्टिगोचर हो रही हो, शास्त्रों तथा वेदों की उस स्वतःप्रमाण गर्जना को तर्जित करने के भूरि-भूरि प्रयत्न प्रवृत्तिशील हों, वास्तविक भारतीय संस्कृति की अपेक्षा तत्त्वभास में ही तत्त्वस्वीकार कर उसी के प्रचार के लिए विविध विधानों के सर्जन हो रहे हों, ऐसे समय बड़े-बड़े देश, धर्म वर्णाश्रममर्यादाभिमानी महापुरुषों का सङ्गम भला कब अनुपयुक्त हो सकता है ?

अधिक क्या ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थों के देनेवाले 'कुम्भ-महापर्व' में विश्व के समस्त प्राणी सम्मिलित होकर स्व-स्व-मनोनुकूल अभीप्सित सिद्धि प्राप्त कर तथा समवेत धर्माचार्यवर्ग के आवश्यक सदुपदेशों का मनन कर अपना-अपना वास्तविक कल्याण कर सकते हैं*।

कुम्भ-पर्व में घृतपूर्ण कुम्भादिदान का महत्त्व

कुम्भ-पर्व के समय यथाविधि घृतपूर्ण कुम्भ (कलश) का पूजन कर उसे वस्त्रालङ्कार, आभूषण तथा सुवर्ण-खण्ड सहित सदाचारी विद्वान् को देने से सैंकड़ों गोदान करने का फल मिलता है तथा मनुष्य के पितरों की आत्मा सन्तुष्ट होती है।

इसी प्रकार प्रत्येक कुम्भ-पर्व के तीर्थस्थानों में अनेकविध अन्न, द्रव्यादि के दान करने से करोड़ों तीर्थों में जाने का तथा सैकड़ों 'अश्वमेध यज्ञ' करने का फल प्राप्त होता है।

---

*इस लेखके लेखक आचार्य पं० श्री राजनारायणजी शास्त्री शुक्ल हैं।

कुम्भ-स्नान की विधि

प्रातः काल उठकर सर्वप्रथम देवस्मरण करे पश्चात् शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होकर कुम्भ-प र्व-महत्त्वसूचक श्लोकों का स्मरण करे। अनन्तर यथासमय कुम्भ-स्नानार्थ गङ्गा आदि पवित्र नदी में जाकर अपने दोनों हाथों द्वारा* कुम्भ-मुद्रा (कलश-मुद्रा) दिखला कर और उसमें अमृत की भावना कर निम्नलिखित श्लोकों को पढ़ता हुआ स्नान करे—

देव-दानवसम्वादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं स्नानं कर्तुमीहे जलोद्भव ॥
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।

स्नान करने के बाद सन्ध्या-तर्पणादि से निवृत्त होकर गणपति-पूजनपूर्वक, कुम्भ (कलश) स्थापन करे । अनन्तर श्रद्धा-भक्ति से कुम्भ का षोडशोपचारपूर्वक पूजन करे। पश्चात्

---

*दत्त्वाङ्गुष्ठं पराेङ्गुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन च ।
सावकाशां मुष्टिकां च कुर्यात् सा कुम्भमुद्रिका ॥

एक, चार, ग्यारह, इक्कीस अथवा यथाशक्ति सुवर्ण, रजत, ताम्र या पीतल के कलशों में घृत भर के सुपात्र योग्य विद्वानों को 'घृत-कुम्भ' दान करे।

अथ हरिद्वारमाहात्म्यम्।

स्कन्द उवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम्।
सकृत्स्नानं तु यैर्मर्त्यैर्गङ्गाद्वारे शुभावहे॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १॥

स्कन्द नारद से कहते हैं—हे नारद! मैं तुम्हें मनुष्यों की मुक्ति का एक उपाय बताता हूँ, जो लोग एक बार भी श्रीहरिद्वार में गङ्गास्नान करते हैं वे फिर संसार में जन्म नहीं लेते चाहे करोड़ों कल्प बीत जाँय॥ १॥

यदा भागीरथी राजा सूर्यवंशधरः प्रभुः।
आनयामास स्वर्गाद्धै गङ्गां परमपावनीम्॥ २॥
स्वर्गान्निपतिता गङ्गा पृथिव्यामागता यदा।
तदेवास्य द्विजश्रेष्ठ गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्॥ ३॥

जब सूर्य वंश का राजा भगीरथ उग्र तप करके स्वर्ग से श्री-गङ्गा को लाये और श्रीगङ्गा स्वर्ग से उतर कर पृथिवी में आई उसी दिन से इस तीर्थ का नाम गङ्गाद्वार पड़ा॥ २॥ ३॥

धन्यानां पुरुषाणां हि गङ्गाद्वारस्य दर्शनम् ।
विशेषतस्तु मेषार्के सङ्क्रमेऽतीव पुण्यदे ॥ ४ ॥

पुण्यात्मा पुरुषों को श्री हरिद्वार के दर्शन होते हैं विशेष कर इस तीर्थ में स्नान-दानादि का माहात्म्य मेष-सङ्क्रान्ति में होता है ।।४।।

तत्रापि कुम्भराशिस्थे वाक्पतौ सुरवन्दिते ।
अयने विषुवे चैव सङ्क्रान्तौ चन्द्र-सूर्ययोः ॥
ग्रहणे वा व्यतीपाते पूर्णिमायां महामुने ॥ ५ ॥

हे महामुने ! उसमें भी जब कुम्भ-राशि पर बृहस्पति हो और मेष-राशि पर सूर्य आवे उत्तरायण, दक्षिणायण सङ्क्रान्ति में तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में और व्यतीपात पूर्णिमा में ॥ ५ ॥

सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा ।
अमायां च तथा माघे वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा ॥ ६ ॥

सोमवती अमावास्या में अथवा अन्य किसी अमावास्या में एवं माघ, वैशाख, तथा कातिक मास में इस हरिद्वार तीर्थ का दर्शन तथा स्नान आदि का बड़ा माहात्म्य है ॥ ६ ॥

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां मुनिसत्तम ।
भजन्ते सन्निधिं तत्र स्नातः सर्वत्र जायते ॥ ७ ॥

हे मुने ! साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हरिद्वार तीर्थ में निवास करते हैं जिसने हरिद्वार तीर्थ में स्नान किया उसने समस्त तीर्थों में स्नान किया ॥ ७ ॥

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः ।
प्राप्यते परमं स्थानं दुर्लभं योगिनामपि ॥ ८ ॥

ज्येष्ठ के महीने में शुक्ल पक्षकी दशमी (दशहरा गङ्गा जन्म) के दिन केवल स्नान करने से परम धाम की प्राप्ति होती है जो कि योगियों को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥

कुशावर्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः ।
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत्स्यात्कोटिसंख्यकम् ॥९॥

ब्रह्मकुण्ड से दक्षिण की ओर (एक फर्लाङ्ग की दूरी पर) कुशावर्त नामक महातीर्थ है यहाँ स्नान, दान, जप, होम वेदादि पाठ तथा श्राद्ध, तर्पण जो कुछ किया जाता है वह करोड़ों गुण अधिक होता है ॥ ९ ॥

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विल्वके नीलपर्वते ।
स्नात्वा च कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥१०॥

हरिद्वार, कुशावर्त, विल्वकेश, नीलपर्वत तथा कनखल तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥१०॥

इति हरिद्वारमाहात्म्यं समाप्तम् ।

(२) अथ प्रयागमाहात्म्यम् ।

संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि महिमानं प्रयागजम् ।
षष्टिर्गणसहस्राणि तत्र रक्षन्ति जाह्नवीम् ॥१॥

मार्कण्डेय ऋषि युधिष्ठिर जी से बोले हे राजन् ! संक्षेप से

प्रयागराज का माहात्म्य वर्णन करता हूँ। तीर्थराज (प्रयाग) में श्री गंगाजी की प्रतिदिन साठ (६००००) हजार गण रक्षा करते हैं।

यमुनां रक्षति सदा सविता सत्यवाहनः।
प्रयागं तु विशेषेण स्वयं रक्षेत्प्रजापतिः ॥२॥

सत्यवाहन (सूर्यनारायण) भगवान् प्रतिदिन श्री यमुनाजी की रक्षा करते हैं और प्रयाग की तो विशेष रूप से स्वयं प्रजापति (ब्रह्मा) जी रक्षा करते हैं।

मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः परिवारितः।
तं वटं रक्षति शिवः शूलपाणिर्महेश्वरः ॥३॥

सम्पूर्ण देवताओं के सहित विष्णु भगवान् नरों के मण्डल की रक्षा करते हैं और शूलपाणि श्री महादेवजी उस अक्षय वट-वृक्ष की रक्षा करते हैं।

स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्।
अधर्मेणावृता लोका नैव गच्छन्ति तत्पदम् ॥४॥

सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले उस स्थान की देवता लोग रक्षा करते हैं, किन्तु अधर्मी लोग उस उत्तम स्थान को कभी प्राप्त नहीं कर सकते।

अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥५॥

हे राजन् ! अल्प से अल्पतर भी पाप केवल प्रयागराज के स्मरण से ही सम्पूर्ण नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि ।
मृत्तिका लभनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥६॥

प्रयागराज के दर्शन तथा नाम-कीर्तन से और वहाँ की मृत्तिका लेपन करने से मनुष्य तत्काल ही सर्वप्रकार के पापों से छूट जाता है।

पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागदर्शनादेव पापं नश्यति तत् क्षणात् ॥७॥

हे राजन् ! जिन पांच कुण्डों के बीचमें श्री गंगाजी बहती हैं सो वहाँ प्रयागराज का दर्शन करने से नर तत्काल ही सञ्चित पापों से मुक्त हो जाता है।

योजनानां सहस्रेषु यो गंगां स्मरते नरः ।
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमं पदम् ॥८॥

हजारों कोश दूर होनेपर भी जो गङ्गाजी का स्मरण करता है वह चाहे कितना भी पापी क्यों न हो अवश्य ही परम उत्तम पदको प्राप्त होता है।

ब्रह्मचारी वसन्मासं पितृदेवांश्च तर्पयेत् ।
गंगा-यमुनयोश्चैव संगमे स्नानमाचरेत् ॥९॥

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ जो प्राणी एक मास अर्थात् माघ महीने में कल्पवास करता है और पितरों का तथा देवताओं का तर्पण करता है एवं प्रतिदिन गङ्गा-यमुना के सङ्गम में विधिपूर्वक स्नान करता है वह परम कल्याण को प्राप्त होता है।

प्राप्यते मानवैः पुण्यं प्रयागे तु युधिष्ठिर ।
देव-दानव-गन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥१०॥

हे युधिष्ठिर ! प्रयागराज में स्नान करने से मनुष्य अत्यन्त उत्तम पुण्य का भागी होता है अतएव देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण आदि सभी प्रयागराज की विशेष इच्छा रखते हैं ।

तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपाश्नुते ।
अपि दुष्कृतकर्माणो ये नरा दुःखभागिनः ॥११॥

हे राजेन्द्र ! कितना भी दुराचारी आदमी क्यों न हो वह भी प्रयागराज में स्नान करने से स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ।

क्षेत्रदर्शनमात्रेण जायन्ते सुखिनो नराः ।
पृथिव्यामटमाना ये लभन्ते शर्मणः क्वचित् ॥१२॥

थवी में इधर उधर विचरता हुआ जो आदमी कहीं पर भी शान्ति को प्राप्त नहीं होता वह केवल प्रयाग क्षेत्र में गंगा-यमुना के संगम देखने से ही परम शान्ति को प्राप्त होता है ।

वेणीदर्शनमात्रेण जायन्ते सुखिनो नराः ।
भूतप्रेतपिशाचा वा वेणीपानीयबिन्दुभिः ॥१३॥

त्रिवेणी के दर्शन तथा स्नान से मनुष्य अलभ्य सुख को प्राप्त होता है और भूत, प्रेत, पिशाच तथा वेताल योनियों में विचरने वाले प्राणी त्रिवेणी के केवल जल-बिन्दु के स्पर्शमात्र से स्वर्गगामी होते हैं ।

स्पृष्टमात्रा विमुच्यन्ते दिव्यदेहधरा नृप ।
स्वर्गलोकं प्रयान्त्येव निष्पापाः शुद्धमानसाः ॥१४॥

और वे दिव्य शरीर को धारण कर हे राजन् सञ्चित पापों से छूटकर परम पद को प्राप्त होते हैं।

तीर्थराजप्रयागस्य माहात्म्यं कथयिष्यति ।
शृणुयात्सततं भक्त्या वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥१५॥

हे राजन् ! तीर्थराज प्रयाग के माहात्म्य को जो भक्ति से सर्वदा कहेंगे अथवा सुनेंगे वे प्राणी अपने वाञ्छित फल को प्राप्त करेंगे।

इति मत्स्यपुराणोक्तं प्रयागमाहात्म्यं समाप्तम् ।

(३) अथ *अवन्तिकामाहात्म्यम् ।

विपन्नो यत्र वै जन्तुः प्राप्यापि शवतां स्फुटम् ।
न पूतिगन्धमाप्नोति समुच्छूयति न क्वचित् ॥
यमदूता न यस्यां हि प्रविशन्ति कदाचन ।
परः कोटीनि लिङ्गानि तस्यां सन्ति पदे पदे ॥

---

*आधुनिक लोग अवन्तिका पुरी को 'उज्जैन' कहते हैं। उज्जैन का दूसरा नाम 'महाकालपुरी' भी है। महाकालपुरी का नाम प्रत्येक युग में परिवर्त्तित होता रहता है। लिखा भी है—

कल्पे कल्पेऽखिलं विश्वं कालयेद्यः स्वलीलया ।
तं कालं कलयित्वा यो महाकालोऽभवत्किल ॥
(का० ख० ७।६१)

हाटकेशो महाकालस्तारकेशस्तथैव च ।
एकं लिङ्गं त्रिधा भूत्वा त्रिलोकीं व्याप्य संस्थितम् ॥
ज्योतिः सिद्धवटे ज्योतिस्ते पश्यन्तीह ये द्विजाः ।
अथवा श्रीमहाकालद्रष्टारः पुण्यराशयः ॥
महाकालस्य तल्लिङ्गं यैर्दृष्टं कष्टिभिः क्वचित् ।
न स्पृष्टास्ते महापापैर्न दृष्टास्ते यमोद्भटैः ॥
महाकाल महाकाल महाकालेति सन्ततम् ।
स्मरतः स्मरतो नित्यं स्मरकर्तृस्मरान्तकौ ॥

(काशीखण्ड ७।६३—६८)

'उज्जयिनी में प्राणी मर कर शव (मुर्दा) होने पर भी न तो दुर्गन्ध को प्राप्त होता है और न सड़ता ही है। वहाँ पर कभी भी यमदूत प्रवेश नहीं करते और वहाँ पर करोड़ों शिव पद-पद पर वर्त्तमान हैं। एक ही ज्योतिर्लिङ्ग हाटकेश, महाकाल और तारकेश्वर इन तीनों रूपों से त्रैलोक्य में व्याप्त होकर स्थित है। जो द्विजातिगण इस उज्जयिनी सिद्धवट में ज्योतिस्वरूप ज्योतिर्लिङ्ग अथवा श्री महाकालेश्वर के दर्शन करते हैं; वे पुण्यराशि परंज्योति को देख लेते हैं। संसार के जिन दीन-दुःखियों ने कभी भी महाकालेश्वर के लिङ्ग का दर्शन किया है उन्हें न तो महापाप छूते हैं और न यमदूतगण ही सताते हैं। महाकाल, महाकाल, महाकाल इस प्रकार सर्वदा स्मरण करने वाले को

कामदेव के पिता (विष्णु) और शम्भु (शिव) ये दोनों स्मरण करते रहते हैं।'

इति काशीखण्डोक्तमवन्तिकामाहात्म्यं समाप्तम्।

(४) अथ *नासिकमाहात्म्यम्।

गोदावरी में सिंहस्थ पर्व के समय देव, दानव, यक्ष और मनुष्यादि जो कोई गौतमी गङ्गा का स्नान तथा पान करेगा वह समस्त सङ्कटों से मुक्त होकर सर्वविजयी होगा। गोदावरी में गुरु सिंह-राशि में निवास करते हुए विधिपूर्वक स्नान, पूजा, पाठ तथा दान करने से मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य गोदावरी में कुम्भपर्व के समय 'इन्द्रतीर्थ' में स्नान कर 'त्र्यम्ब-केश्वर' के दर्शन करता है वह समस्त पापों से छुटकारा प्राप्त कर 'इन्द्रलोक' में जाता है और जो कुम्भपर्व पर इन्द्रतीर्थ में स्नान-दानादि कर पितरों का श्राद्ध-तर्पण करता है वह पितृऋण से मुक्त होकर अक्षय सुख की प्राप्ति करता है।

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अ० २४)

जो कोई कुम्भपर्व के अवसर पर सिंहस्थ में विधिपूर्वक गोदावरी में स्नान तथा त्र्यम्बक का दर्शन करता है उसे समस्त तीर्थों के स्नान का पुण्यफल तथा समस्त देवताओं की आराधना एवं दर्शन का फल होता है। साथ ही उस मनुष्य के समस्त पापों की निवृत्ति हो जाती है।

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अ० २७)

---

*नासिक को गोदावरी, पञ्चवटी, गौतमी क्षेत्र आदि कहा जाता है।

वैसे तो तीनों लोकों में व्याप्त रहने वाली गोदावरी के स्नान, दर्शन एवं निवास का सर्वदा विशेष महत्त्व रहता है, किन्तु सिंहस्थ कुम्भकाल में उसका विशेष महत्त्व बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि गोदावरी सिंहस्थ कुम्भ-समय में अपने समस्त अंशों को स्वर्ग और पाताल से खींचकर त्र्यम्बक क्षेत्र (गोदावरी या नासिक) में निवास करती है। गोदावरी स्थित गौतमी गङ्गा के किनारे से चारों ओर दस-दस योजन के अन्तर में जो मनुष्य जन्म ग्रहण करता है उसका पितरों सहित उद्धार हो जाता है।

कुम्भ-पर्व-माहात्म्य-समाप्त ॥

* इति *

चतुरंग-चातुरी

यह तो आप जानते ही होंगे कि—

१—शतरञ्ज को ही संस्कृत में 'चतुरङ्ग' कहते हैं।

२—शतरञ्ज सारी दुनिया में खेली जाती है।

३—इससे अधिक आकर्षक और बुद्धि का खेल दूसरा नहीं है।

४—अङ्गरेजी आदि भाषाओं में शतरञ्ज की बहुत सी पुस्तकें हैं।

५—हिन्दी में एकमात्र पुस्तक 'चतुरंग-चातुरी' ही है।

'चतुरंग-चातुरी' पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की रचना है, जो अपने समय के अद्वितीय खिलाड़ी थे और गायब्बाजी शतरञ्ज खेलते थे।

इस पुस्तक में खेल के नियम, मोहरों की चाल, एक घर में एक ही बार चल कर घोड़े के ६४ घरों में घूमने का नकशा, तीन पट्टियों में घोड़ा घूमने का नकशा, हुक्मी चालें, किले की बँधावट, किला तोड़ने के उपाय, तरह-तरह के नकशे आदि हैं। इन नकशों को याद कर लेने से अच्छे-अच्छे खिलाड़ियों को चुटकी बजाते मात किया जा सकता है। आप शतरञ्ज के प्रेमी हों तो आज ही मँगाइये। मूल्य १॥)

प्राप्तिस्थान—व्यास पुस्तकालय,

मानमन्दिर, काशी।